पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, गाथा २७८-२७९, कलश १७५,
शिकोहाबाद, ता. १२-४-१९८९, प्रवचन नंबर P१८

ये श्री समयसार जी परमागम शास्त्र है, जो आज से दो हजार (वर्ष) पूर्व समर्थ आचार्य दिगम्बर मुनियों द्वारा, उनका लिखा हुआ है, कुन्दकुन्द आचार्य भगवान का। उसके ऊपर टीका एक हजार साल बाद में हुई, संस्कृत टीका। आत्मख्याति नाम की टीका है। आत्मा की प्रसिद्धि कैसे हो, उसका इसमें वर्णन है। उसकी २७८, २७९ गाथा पूरी हो गई, टीका (पूरी हुई)। उसका भावार्थ। मूल विषय ये है कि, क्या विषय है कि, जब आत्मा अपने स्वभाव से च्युत हो जाता है, तब राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्व, दर्शन-मिथ्यात्व, ज्ञान-मिथ्यात्व, चारित्र-मिथ्यात्व, सब दोषों की उत्पत्ति होती है। अपने स्वभाव को भूल जाता है, स्वभाव से च्युत हो जाता है, परिणति अपने स्वभाव से छूट जाती है, दूर हो जाती है। तो दोष की उत्पत्ति का मूल कारण, अपने स्वभाव से च्युत होना, मूल पाठ में ये है।

तो जब दोष उत्पन्न होता है, रागादि, तो रागादि में परद्रव्य निमित्त कहा जाता है। मगर निमित्त कब कहा जावे? कि दोष उत्पन्न हो तो। दोष कैसे उत्पन्न होता है? कि अपने स्वभाव से च्युत हो तो। ज्ञाता को कर्ता मानना, वो दोष है। आत्मा, सबका आत्मा ज्ञाता ही है। कर्ता होता नहीं है, हो सकता भी नहीं है। कर्ताबुद्धि होती है, कर्ताबुद्धि होने पर भी आत्मा अपने अकर्ता स्वभाव को तीनकाल में छोड़ता नहीं है, मूल भाव को छोड़ता नहीं है। आत्मा मूल अकर्ता है। मानता है कि मैं कर्ता हूँ, परपदार्थ का कर्ता हूँ, दूसरे को सुखी-दुःखी कर सकता हूँ, दूसरों को मैं बोध कराकर, उसको (मैं) आत्मदर्शन कराता हूँ। मिथ्यात्व है, ऐसी मान्यता ठीक नहीं है।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के परिणाम का तीनकाल में कर्ता होता नहीं है। ज्ञाता होने पर भी कर्ता मानना, वो स्वभाव से च्युत हो गया। अकर्ता को कर्ता माना, ज्ञाता को कर्ता माना, वो स्वभाव से च्युत हो गया। मिथ्यादर्शन की पर्याय प्रगट हो गई और श्रद्धा की च्युति है और ज्ञान की भी एक च्युति होती है। जो ज्ञान प्रत्येक जीव में प्रत्येक समय पर उपयोग लक्षण प्रगट होता है, ज्ञान प्रगट होता है। एक ज्ञान प्रगट है, दूसरा ज्ञान प्रगट होता है। एक ज्ञान प्रगट है, इसका अर्थ, द्रव्यस्वभाव ज्ञानमयी आत्मा प्रगट है। उसको प्रगट (करना) नहीं (है), वो तो प्रगट मेरे में है। और उसको प्रसिद्ध करनेवाला ज्ञान प्रगट होता है। जो है, उसको प्रसिद्ध करनेवाला एक ज्ञान समय-समय पर नया, नया, नया, नया, नया, नया, नया, नया, वो ही का वो ही लेना। वो ही का वो ही, वो ही का वो ही, वो ही का वो ही। ज्ञान तो वो ही का वो ही का वो ही है। उपयोग जो लक्षण है, वो प्रगट होता है। वो जो प्रगट पर्याय में भगवान आत्मा जानने में आ रहा है, समय-समय पर सबको। ऐसे नहीं मानकर, मैं ज्ञायक को नहीं जानता हूँ, तो अज्ञान हो गया।

अज्ञान, दोष उत्पत्ति का कारण क्या? कि अपने को भूल गया कि जाननहार जानने में आता है, वो भूल गया। वो दोष हुआ। दोष की उत्पत्ति का उद्भव स्थान वहाँ है। समझे? जैसे गंगा नदी का

उद्भव स्थान कहाँ है? हिमालय। है कि नहीं? हिमालय। ऐसे दोष की उत्पत्ति का मूल कारण, मूल कारण, उद्भव स्थान कहाँ है? कि ज्ञान में ज्ञायक जानने में आने पर भी, (ऐसा मानता है कि) वो तो भगवान ज्ञायक तो अरिहंत को जानने में आवे, सिद्ध को जानने में आवे, मुनिराज को जानने में आवे, सम्यग्दृष्टि को जानने में आवे। हमको तो जानने में नहीं आता है क्योंकि हम तो अज्ञानी हैं। हम तो (अज्ञानी हैं)। नहीं है। तू ज्ञानवान है, अज्ञानी नहीं। अज्ञानी (कहने की) भाषा फेर दे। मैं सम्यग्ज्ञानी हूँ, ऐसा मत बोल। ऐसा, मैं मिथ्याज्ञानी हूँ, ऐसा भी मत बोल। मैं तो ज्ञानमय आत्मा हूँ। मैं तो ज्ञानवान हूँ। मैं तो ज्ञानी हूँ, ऐसा नहीं। मैं तो ज्ञानवान हूँ, ऐसा ले। समझे? आहाहा! ज्ञानवान तो हैं ना सब? ज्ञानवान हैं। ज्ञानस्वरूपी हैं, ज्ञानमयी है आत्मा।

वो, उसके ज्ञान की पर्याय में अपना आत्मा समय-समय पर, जानने में आने पर भी, उसका वो निषेध करता है। मेरा आत्मा मेरे को जानने में नहीं आता है। तो क्या आता है? कि रागादि जानने में आता है, देहादि जानने में आता है। मंदिर में जाऊँ तो भगवान की प्रतिमा, पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा जानने में आती है। इसका अर्थ कि मेरे ज्ञान में मेरा आत्मा जानने में नहीं आता है, वो ज्ञान की च्युति हो गई। पहले श्रद्धा की च्युति, कर्ताबुद्धि में, और ज्ञान की च्युति (कि) मैं जानने में नहीं आता हूँ। वो ज्ञान की च्युति, अज्ञान हो गया। अज्ञान की उत्पत्ति वहाँ से हुई।

जानने में आने पर भी नकार करता है। निज परमात्मा जानने में आ रहा है, सबको, सदाकाल, अभी भी, निरंतर, तो भी (मानता है कि) वो तो भगवान का दर्शन तो ज्ञानी को होता है, हमको नहीं। तेरे को भगवान का दर्शन हो रहा है, तू निषेध करता है। वो ज्ञान की च्युति हो गई, अज्ञान हो गया। ज्ञान का अज्ञान, ज्ञान का अज्ञान। था तो ज्ञान, उत्पन्न तो था ज्ञान। ज्ञान यानि सम्यग्ज्ञान उत्पन्न नहीं, ज्ञान उत्पन्न था। मिथ्याज्ञान भी उत्पन्न नहीं होता है और सम्यग्ज्ञान भी उत्पन्न नहीं होता है। ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान का सदुपयोग करे, तो सम्यग्ज्ञान। यानि मेरे ज्ञान में ज्ञायक जानने में आ रहा है, तो वो ज्ञान था, उसका नाम सम्यग्ज्ञान हो गया, अतीन्द्रियज्ञान हो गया। सदुपयोग किया ज्ञान का। और वो ही ज्ञान का दुरूपयोग करता है कि, मेरे ज्ञान में मेरा आत्मा जानने में आता नहीं है, उसका नाम अज्ञान है।

तो अज्ञान जब उत्पन्न होता है, इन्द्रियज्ञान उत्पन्न होता है, तो पर को जानता है, स्व को जानता नहीं है। तो कहा जाता है कि पर को जानने से अध्यवसान होता है, मिथ्याज्ञान होता है। मगर उद्भव स्थान इधर से है। अपने को आप भूलकर हैरान हो गया। कर्म के उदय से कोई दुःखी नहीं है। असाता के उदय से कोई भी दुःखी होता नहीं है। अपने अज्ञान से दुःखी होता है और आत्मज्ञान से सुखी होता है। आहाहा! ऐसी बात है। स्वभाव से च्युत होना दोष है। वो दो गाथा में आ गया।

अभी भावार्थ। भावार्थ में, दृष्टांत में लिखते हैं कि **स्फटिकमणि स्वयं तो मात्र एकाकार शुद्ध ही है;** अनेकाकार नहीं है। स्फटिकमणि का जो स्वभाव है, स्वभाव है, एकाकार शुद्ध है, अनेकाकार उसमें नहीं है। शुद्ध ही है, शुद्ध ही है। शुद्ध ही है, सम्यक्एकांत कर दिया। कथंचित् शुद्ध और कथंचित् अशुद्ध, ऐसा नहीं है। क्योंकि अशुद्धता धर्म स्फटिकमणि में है ही नहीं और उसमें स्थापना और बाद में कथंचित् कहना, वो अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? स्थापने के बाद कथंचित् कहना,

वो तो अज्ञान हो गया। है ही नहीं और स्थाप (दिया)। स्थापने के बाद कथंचित्। कथंचित् शुद्ध और कथंचित् अशुद्ध, स्थापने के बाद बोलता है। आहाहा! मगर स्थापना ही नहीं और देख ले, तो (मालूम चलेगा) कथंचित् नहीं है (बल्कि) सर्वथा शुद्ध है।

मुमुक्षुः- आहाहा! कथंचित् स्थापता है, (पर) वो है नहीं।

उत्तरः- है नहीं। स्थापता है, तो उत्थापना पड़ता है। मगर स्थापना ही नहीं। मैं तो सर्वथा शुद्ध हूँ। आहाहा! स्फटिकमणि तो सर्वथा शुद्ध ही है। जल निर्मल ही है, जल निर्मल ही है। और मैल को अंदर स्थापता है, मैल को। पर्याय के अंदर स्वभाव में डालता है, तो कथंचित् निर्मल है और कथंचित् मलिन कहा जाता है। मगर वो स्थापना बंद कर दे, तो निर्मल ही है। आहाहा! सर्वथा निर्मल; कथंचित् तो स्थापता है, इसके लिए। स्थापना ही बंद कर दो ना। स्थापकर उत्थापना, मिट्टी लगाना पहले और बाद में स्नान करना। मिट्टी लगाना बन्द कर दो। मिट्टी लगावे तो स्नान करने का प्रश्न है, मैल धोने का। हें? और मिट्टी लगाई ही नहीं तो? नहाने की ज़रूरत नहीं है। इसलिए राग को स्थापता है, इसलिए राग को निकालने का उपदेश आता है कि तेरे में राग है नहीं। स्थापनेवाले के लिये उपदेश है। जिसने स्थापा ही नहीं, उसके लिये उपदेश है नहीं।

तो **स्फटिकमणि स्वयं तो मात्र एकाकार शुद्ध ही है;** आहाहा! थोड़ा अशुद्ध हो गई और बाद में शुद्ध हुई, ऐसा नहीं होता। स्वभाव त्रिकाल शुद्ध रहता है। कथंचित् शुद्ध और कथंचित् अशुद्ध, (ऐसा) स्वभाव में लागू पड़ता नहीं है। सर्वथा शुद्ध है, सर्वथा शुद्ध है। **वह परिणमनस्वभाववाला होने पर भी** यानि स्फटिकमणि, **परिणमनस्वभाववाला होने पर भी**, आहाहा! परिणमन स्वभाव तो है स्फटिकमणि में। स्फटिकमणि शुद्ध है। उसका परिणमन होने पर भी वो शुद्ध ही रहता है। अशुद्ध होता नहीं है। ध्रुव तो शुद्ध है, मगर उत्पाद-व्यय भी शुद्ध है। उत्पाद-व्यय होने से स्फटिकमणि में, रताश-लाल आ गया, ऐसा है नहीं। दो बात किया।

अभी आगे, **अकेला अपने आप ललाई-आदिरूप नहीं परिणमता...** यानि अकेला-अकेला स्फटिकमणि पड़ा हो, तो लालरूप में परिणमता नहीं है। वो लाल की उपाधि का कारण त्रिकाल स्फटिकमणि की शुद्धता भी नहीं, उसका परिणमन भी नहीं है (बल्कि) परद्रव्य है निमित्त। निमित्तकारण परद्रव्य है। वो निमित्तकारण परद्रव्य कब कहलाता है? कि स्वभाव से च्युत हो, तो। नंबर वन और नंबर टू। आहाहा! अलौकिक समयसार!

किन्तु लाल आदि परद्रव्यके निमित्तसे (स्वयं ललाई-आदिरूप परिणमते ऐसे परद्रव्यके निमित्तसे) ललाई-आदिरूप परिणमता है। आहाहा! उसमें स्वभाव से च्युत लिया था, मूल में। टीका में आया था। **ऐसे परद्रव्यके द्वारा ही, शुद्धस्वभावसे च्युत होता हुआ ही, रागादिरूप परिणमित किया जाता है।** स्वभाव से च्युत, वहाँ शब्द आया है। इधर इसमें (स्वभाव से) च्युत शब्द नहीं लिया, तो समझ लेना। मूल टीका में है। भावार्थ में छूट गया। मूल चीज़ है वो। एक, **परद्रव्यके निमित्तसे**, आहाहा! **ललाई-आदिरूप परिणमता है।** वो दृष्टांत पूरा हो गया, स्फटिकमणि का दृष्टांत हुआ पूरा।

अभी सिद्धांत बताते हैं आचार्य भगवान। **इसीप्रकार आत्मा स्वयं तो** आहाहा! स्वयं तो, अपने आप तो शुद्ध ही है; अकर्ता ही है, ज्ञायक ही है, ज्ञाता ही है, सर्वथा। आत्मा अकर्ता ऐसा ज्ञायक है, तो

सर्वथा ज्ञायक है। कथंचित् कर्ता और कथंचित् ज्ञाता, ऐसा नहीं है। आहाहा! वो तो कर्ता का जब मिलान करो तो कथंचित् कर्ता-अकर्ता की बात आती है। आहाहा! प्रमाण उत्पन्न करो तो नय निकालना चाहिए। प्रमाण स्थापित ही नहीं (करो) तो? व्यवहार का निषेध करने की ज़रूरत नहीं है। जैसा हूँ, वैसा अनादि-अनंत हूँ।

मुमुक्षुः- मूल बात है। आज तो मूल में भी मूल बात आई।

उत्तरः- मूल बात है। आज तो मूल में भी मूल (आई), सच्ची बात है।

जल, अपनी योग्यता से, मिट्टी के संग और अपनी पर्याय की योग्यता से मलिन हुआ। द्रष्टान्त समझना। जो पर्याय में मलिनता आ गई, तो-तो अपने को फिटकरी डालने की, निर्मली औषधि डालने की ज़रूरत पड़ती है, मैल निकालने के लिये। मगर जो जल स्वच्छ है, उसमें कोई फिटकरी डालता है? इसमें जिसकी पर्यायदृष्टि हो गई है, उसके लिए भेदज्ञान है। बाकी भेदज्ञान की आवश्यकता नहीं है। मूल में भूल। कहा ना मिट्टी लगाना, बाद में नहाना। मिट्टी लगाना ही नहीं। आहाहा! ऐसे, मैं तो त्रिकाल शुद्ध चिदानंद आत्मा हूँ। आहाहा!

इसीप्रकार आत्मा स्वयं तो, अपने आप तो **शुद्ध ही है**; कथंचित् शुद्ध और कथंचित् अशुद्ध नहीं है। आहाहा! कोई अलौकिक जैनदर्शन है। नहीं तो-तो लिखना पड़े कि शुद्ध है, शुद्ध है। मगर शुद्ध ही है, शुद्ध भी नहीं। 'भी' नहीं, 'ही' है। 'भी' कहो तो कथंचित् अशुद्धता आ जायेगी। मगर 'भी' में अशुद्धता आती है, 'ही' में (नहीं आती)।

मुमुक्षुः- गुंजाईश ही नहीं।

उत्तरः- गुंजाईश ही नहीं, चान्स ही नहीं है। आत्मा शुद्ध भी है, ऐसा नहीं है। शुद्ध ही है। 'ही' में (और) 'भी' में बहुत फेर है। 'ही' त्रिकालस्वभाव का प्रतिपादन करता है और 'भी' में दूसरे पड़खे (पहलू) का ज्ञान कराते हैं। निषेध करने के लिये, निषेध करने के लिए। वो भी क्या? हाँ! वो भी निषेध करने के लिए। पकड़ लिया उसने, बच्चा पकड़ता है। रवींद्रबाबू! ये बच्चा छोटा पकड़ता है। आहाहा! तो बड़ों को तो (ख्याल आना चाहिए)। छोटा-बड़ा कोई नहीं है। सब भगवान आत्मा हैं। आहाहा! कोई मनुष्य नहीं, कोई तिर्यंच नहीं, कोई स्त्री नहीं, कोई पुरुष नहीं, कोई बालक नहीं, कोई वृद्ध नहीं। सब आत्मा हैं।

इसीप्रकार आत्मा स्वयं तो शुद्ध ही है; आहाहा! अब शुद्ध है या शुद्ध करना है? तेरे को शुद्ध की खबर ही नहीं है। तूने अशुद्ध ही आत्मा मान लिया। शुद्ध करना है तेरे को? आहाहा! आत्मा तो त्रिकाल शुद्ध है। शुद्ध को शुद्ध करना (ये) भाषा खोटी है। और आत्मा अशुद्ध है तो शुद्ध करना, वो भी भाषा खोटी है क्योंकि आत्मा अशुद्ध हुआ ही नहीं है।

मुमुक्षुः- आहाहा! अलौकिक बात है।

उत्तरः- शिकोहाबाद है ना। भाई ने कहा था। मैं बहुत कहूँ ना आपकी लड़की को, तो फट (से) मेरे को पकड़ती है। अच्छा! इधर रह जाओ, ऐसे बोलती है। पकड़ लिया।

आहाहा! **इसीप्रकार आत्मा**, आहाहा! आत्मा सबका शुद्ध ही है, अशुद्ध हुआ ही नहीं है। पवित्र परमात्मा है, परिपूर्ण है, नित्य निरावरण है। उसको मिथ्यात्व का आवरण, कर्म का आवरण, देह

का आवरण हुआ ही नहीं है। आवरण से रहित नित्य निरावरण अंदर प्रतिमा चैतन्यमूर्ति विराजमान, जलहल ज्योति। आहाहा! **स्वयं तो शुद्ध ही है; शुद्ध ही है, वह परिणमनस्वभाववाला होने पर भी**, कूटस्थ होने पर भी, परिणमन भी, अपरिणामी होने पर भी परिणमता है। परिणमन होने पर भी वो अशुद्ध नहीं होता है। अशुद्ध नहीं होता है। परिणमन होता है तो अशुद्धता आ गई, ऐसा है नहीं। शुद्ध स्वभाव, अशुद्धता का कारण नहीं, उसका उत्पाद-व्यय अशुद्धता का कारण नहीं है।

अभी पर्याय में द्रव्य शुद्ध होने पर भी, पर्याय में अशुद्धता कहाँ से आयी? उसका बंध का कारण बताते हैं। **अकेला अपने आप रागादिरूप नहीं परिणमता, परन्तु रागादिरूप परद्रव्यके निमित्तसे रागादिरूप परिणमता है।** आहाहा! इसमें भी शुद्ध स्वभाव से च्युत नहीं आया। नहीं! **परिणमनस्वभाववाला होने पर भी अकेला अपने आप,** यानि राग का निमित्त आत्मा नहीं है - ये बताना है। **अकेला अपने आप, अपने आप रागादिरूप नहीं परिणमता।** राग में निमित्त अन्य द्रव्य है।

रागादिरूप नहीं परिणमता, परन्तु रागादिरूप परद्रव्यके निमित्तसे (-अर्थात् स्वयं रागादिरूप परिणमन करनेवाले परद्रव्यके निमित्तसे)... स्वयं वहाँ लागू पड़ता है, वहाँ लागू (पड़ता है), इधर नहीं। **स्वयं रागादिरूप परिणमन करनेवाले परद्रव्यके निमित्तसे)...** राग का अनुभाग है ना वहाँ, उसके, कर्म के अंदर। तो स्वयं परिणमता है वो। उसका निमित्त का लक्ष्य जाता है, उपादान का लक्ष्य छूट गया। अंदर देखना चाहिए ज्ञायक को, ज्ञायक को देखना भूल गया, स्वभाव से च्युत हो गया। स्वभाव से च्युत हुआ, अपना लक्ष्य छूटा, तो पर का लक्ष्य आये बिना रहता नहीं है। पर का लक्ष्य हुआ, तो राग हुआ, ऐसा नहीं है। अपना लक्ष्य छूटा तो राग हुआ, वो नियमरूप कारण है। वो निमित्तकारण है।

फिर से, फिर से। जब राग उत्पन्न होता है, तो आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि राग में निमित्त परद्रव्य है, उसका अनुभाग। समझे? तो वो जो राग की उत्पत्ति होती है, वो परद्रव्य का लक्ष्य किया तो राग की उत्पत्ति होती है - ऐसा भी नहीं। मगर अपनी आत्मा को नहीं जाना, (आत्मा को) भूल गया - वो राग की उत्पत्ति का नियमरूप कारण है। तो राग उत्पन्न हुआ अपने उपादान से, क्षणिक पर्याय से, क्षणिक पर्याय से राग उत्पन्न हुआ, राग (की) उत्पत्ति होने का कारण क्या? कि अकर्ता को कर्ता माना, तो कर्ताबुद्धि आई, अहम् आ गया, तो विकार हो गया उत्पन्न। तो विकार में निमित्त परद्रव्य होता है, स्वद्रव्य निमित्त होता नहीं है। शुद्धात्मा निमित्त नहीं। शुद्धात्मा अकर्ता है इसलिए निमित्त नहीं है। वो निमित्त भी अकर्ता है, वो कारण नहीं है। मगर कारण, मूल कारण स्वभाव से च्युत होना (है)। अपने को भूलकर आप हैरान हो गया। आहाहा! अपने को भूल जाना, वो अज्ञान है। अपने को भूल जाना, वो अज्ञान है। आहाहा!

एक दफ़े ऐसा हुआ, हमारे मित्र हैं, राजकोट में। उससे विशेष कोई बात करो, तो मैं कहूँगा, ऐसा कहा। बातचीत होती थी। उसमें प्रेमचंद जी आया, वहाँ से। दिल्ली से आया, प्रेमचंद जी। बार-बार आते थे। वर्ष में दो-तीन बार आते थे। तो चाय पीने को गया फज़ल (सुबह) में उसके साथ, तो मेरे मित्र के वहाँ। तो मेरा मित्र है, उसको मैंने कहा कि साहब! आज तो ये प्रेमचंद जी आया नहीं। प्रेमचंद जी

दिल्ली से, हमारे घर। तो उसने मेरे को ऐसा कहा कि भाईसाहब! मैं दिल्ली से आया हूँ और मेरा नाम प्रेमचंद जी है। मैंने कहा कि ये मगज (दिमाग) फिर गया है उसका। वो तो बार-बार आता है। मैं जानता हूँ उसको तो। ये कहने की ज़रूरत क्या है पड़ी, तेरे को? देख! ऐसे, ऐसे आत्मा शुद्ध ही है। मैं शुद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, शुद्ध हूँ कहने की ज़रूरत क्या है? आहाहा! मेरे को शंका हो गई। प्रेमचंद जी को शंका हो गई कि साहब! मैं दिल्ली से आया हूँ, मेरा नाम प्रेमचंद जी (है)। अपने आप में शंका हो गई, तो (ही ऐसा) बोला। नहीं तो बोलने की ज़रूरत नहीं है। आहाहा!

आखिर का ये टाइम, आखिर की बात है। आखिर का ये लेसन, पाठ है। मैं ज्ञायक हूँ, बोलने की ज़रूरत क्या है तेरे को? शंका है तेरे को। दूसरे को समझाने के लिए ज्ञानी कहते हैं। वो ज्ञायक हूँ, ज्ञायक हूँ, रटन नहीं करता है। अनुभव कर लेता है, अनुभव कर लेता है।

मुमुक्षुः- आखिर की बात है।

उत्तरः- आखिर की बात है। ऐसे भगवान आत्मा अपने स्वभाव को भूलता है, तो राग उत्पन्न होता है और राग उत्पन्न होता है, तो परद्रव्य को निमित्त कहा जाता है। ठीक है! **रागादिरूप परिणमता है। ऐसा वस्तुका ही स्वभाव है, उसमें अन्य किसी तर्कको अवकाश नहीं है।** पर्यायस्वभाव से राग उत्पन्न होता है। पर से राग उत्पन्न नहीं होता है, स्व से भी राग उत्पन्न नहीं होता है। पाप का और पुण्य का परिणाम स्व से भी नहीं और पर से भी नहीं। भगवान की भक्ति का राग आया शुभभाव, दर्शन-पूजा करने का। कि किसने किया? शुभभाव किसने किया, बताओ तो सही? कार्य तो है, कार्य तो है, कार्य तो हो गया। कार्य तो शुभभाव तो है ना, तो उसका कोई कर्ता होने चाहिए। कौन कर्ता है बताओ? कर्ता कौन है उसका? आत्मा है कि निमित्त है कि कौन कर्ता है?

मुमुक्षुः- कोई कर्ता नहीं है, अकर्ता है।

उत्तरः- कौन अकर्ता है? अकर्ता कौन है बताओ? एक है कि दो?

मुमुक्षुः- दो।

उत्तरः- कौन-कौन?

मुमुक्षुः- निमित्त, त्रिकाली-उपादान।

उत्तरः- एक निमित्त अकर्ता है और त्रिकाली उपादान भी अकर्ता है। और आत्मा अकर्ता रहे और शुभभाव उत्पन्न हो, ऐसा बन सकता है?

मुमुक्षुः- नहीं।

मुमुक्षुः- बनता है। आत्मा भी अकर्ता, देव-गुरु-शास्त्र भी अकर्ता।

उत्तरः- आत्मा अकर्ता रहता है और राग की उत्पत्ति होती नहीं (है), क्योंकि आत्मा राग का करनेवाला नहीं है। इसलिए उसकी उत्पत्ति हो तो कर्ताबुद्धि हो जाये, ऐसा है नहीं। राग की उत्पत्ति होती है, मगर अकर्ता रहता है आत्मा।

मुमुक्षुः- राग की उत्पत्ति कर्ताबुद्धि का कारण नहीं है।

उत्तरः- (राग की उत्पत्ति) कर्ताबुद्धि का कारण नहीं है। और कर्म का उदय आया, तो राग हुआ, ऐसा भी नहीं है। जड़कर्म से राग की उत्पत्ति नहीं होती है और भगवान आत्मा भी उसका

उत्पादक नहीं है। वो कार्य का कर्ता, परिणाम का कर्ता परिणाम है। उसमें लिखा है। इसमें पहली बुक में भजन में लिखाया था। भूल गया थोड़ा, पढ़ लेना। आहाहा!

मुमुक्षुः- तत्समय की योग्यता।

उत्तरः- हाँ! तत्समय की योग्यता। अपने भीतर में कर्ताबुद्धि पड़ी है, अनंतकाल से। कर्ताबुद्धि का शल्य निकलना साधारण नहीं है। आहाहा! असाधारण है। उसके लिये बहुत पुरुषार्थ चाहिए।

रागादिरूप परिणमता है। ऐसा वस्तु का ही स्वभाव है, **उसमें अन्य** लास्ट में तो मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा विकल्प छूट जाता है, नय पक्ष का। पक्षातिक्रांत होता है ना, तब मैं ज्ञायक हूँ, मैं चिदानंद हूँ, मैं चिदानंद हूँ, ऐसा नहीं है। आहाहा! मैं अचल जी हूँ, मैं अचल जी हूँ, मैं अचल जी हूँ, निकले बाज़ार में, भिण्ड के बाज़ार में। मैं अचल जी, मैं अचल जी। क्या हो गया अचल जी को आज? थोड़ा दो आने चार आने फेरफार लगता है। है कि नहीं? फिर? ये सबके लिए है। दृष्टांत है, भाई साहब का। ये तो जहाँ तक ज्ञायक तक नहीं पहुँचता है, तहाँ तक ज्ञायक का स्मरण करता है आत्मा। जब ज्ञायक तक पहुँच जाता है, तो मैं ज्ञायक हूँ - ऐसा नयपक्ष का विकल्प नहीं रहता। अनुभूति होती है साक्षात्। आहाहा! अभी १७५ नंबर का श्लोक है। पढ़ो!

न जातु रागादिनिमित्तभाव-
मात्मात्मनो याति यथार्ककान्तः।
तस्मिन्निमित्तं परसंग एव
वस्तुस्वभावोऽयमुदेति तावत् ।।१७५।।

श्लोकार्थः- सूर्यकान्तमणिकी भाँति, अर्थात् **(-जैसे सूर्यकांतमणि स्वतः ही अग्निरूप)** उष्णरूप से, **(परिणमित नहीं होता),** आहाहा! सूर्यकान्तमणि होता है, जंगल में। जब सूर्य का उदय होता है, उसकी किरण पड़ती है, तब उसकी अग्नि प्रज्ज्वलित होती है। सूर्य का उदय न हो तहाँ तक, (वो) ऐसे ठंडा का ठंडा ही रहता है। वो (सूर्य) निमित्तकारण है, वो (योग्यता) उसका उपादानकारण है। **सूर्यकान्तमणिकी भाँति** अर्थात् **(-जैसे सूर्यकान्तमणि स्वतः से ही)** अपने आप, **(अग्निरूप परिणमित नहीं होता),** यानि रात्रि हो तो अग्निरूप होता नहीं है। उसकी योग्यता नहीं और अनुकूल निमित्त का अभाव (है)। योग्यता का अभाव, तत्समय की पर्याय की योग्यता का अभाव और अनुकूल निमित्त का भी अभाव। निमित्त का अर्थ है, अकर्ता। निमित्त का अर्थ है, अकर्ता।

सूर्य अकर्ता है, उष्ण में सूर्य कर्ता नहीं है। अत्यंत अभाव है। निमित्त का तो अत्यंत अभाव है। जिसका जिसमें अत्यंत अभाव है, वो कर्ता कहाँ से बने?

सूर्यकान्तमणिकी भाँति, आहाहा! जिसमें जिसका अभाव (है), अत्यंत अभाव, वो उसका कर्ता कहाँ से बने? आहाहा! निमित्तकर्ता कहा जाता है, इस ईक्वल टू अकर्ता। उसका भावार्थ है अकर्ता। निमित्तकर्ता, इसका अर्थ अकर्ता। निमित्त उसका कर्ता नहीं है। अकर्ता, स्वयं परिणमता है पदार्थ, उसमें क्या? निरपेक्ष है वो तो। आहाहा! तुम्हारी माताजी हाँ बोलती हैं। ऐसा (हाँ) बोलती हैं। 'हाँ' ही आवे अंदर में से, ऐसा जिनागम है। आहाहा! चमत्कारिक शास्त्र है।

किसी को टाईम ही नहीं है, पैसा कमाने के पीछे ही पड़ गया सब। पैसा साथ में आवे नहीं।

पैसा रजकण (भी) साथ में आवे नहीं और चौबीस घंटा। आहाहा! पैसा, पैसा, पैसा, पैसा। आहाहा! चौबीस घंटा उसके पीछे पड़ जावे। आहाहा! आधा घंटा, घंटा, दो घंटा स्वाध्याय का, चिंतवन का, सत्समागम का टाइम मिले नहीं। ऐसे-ऐसे जिंदगी पूरी हो जाये और तिर्यंच में चला जाता है। ज़्यादा करके, ज़्यादा करके व्यापारी लोग माया, कपट, तीव्र लोभ ज़्यादा करके। हो! सब नहीं। आहाहा! सरल परिणामी हो तो मनुष्य होता है। ज़्यादा देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति हो, तो स्वर्ग में भी दुःखी होने के लिये जाता है। दुःखी होने के लिये जाता है। स्वर्ग में कहाँ सुख है? स्वर्ग में सुख है? कि आत्मा में सुख है? स्वर्ग की बात। हाँ! स्वर्ग ठीक। स्वर्ग में दुःख भोगने के लिये जाता है। हा! हा! तो स्वर्ग नहीं चाहिए, तो आत्मा चाहिए। हाँ! तो आत्मा चाहिए।

अग्निरूप परिणमित नहीं होता, अपने आप सूर्यकांतमणि, अग्निरूप, उष्णरूप से परिणमता नहीं है। **उसके अग्निरूप परिणमनमें सूर्यबिम्ब निमित्त है।** आहाहा! उसकी योग्यता, उष्ण पर्याय की योग्यता और वो सूर्य उसको निमित्त है। सूर्य निमित्त है, वो नैमित्तिक है। उष्णता नैमित्तिक है। उष्णता का कारण वो सूर्यकांतमणि नहीं (है)। और वो (सूर्य) निमित्तकारण (है)। तो उपादानकारण कौन (है), बताओ? सूर्य तो निमित्तकारण कहा ना, तो उसका उपादानकारण कौन उष्णता का? कि पर्याय का कारण क्षणिक-उपादान (है)। त्रिकाली-उपादान भी अकर्ता, निमित्त भी अकर्ता। कर्ता कहा जाता है। कथनमात्र है।

मुमुक्षुः- वो कथन भी मिथ्या है।

उत्तरः- कथन (भी) मिथ्या है। इस कथन को सत्यार्थ माने, तो दृष्टि विपरीत हो जाती है।

(सूर्यबिम्ब निमित्त है, उसीप्रकार) आत्मा अपनेको रागादिका निमित्त कभी भी नहीं होता, आहाहा! आत्मा रागरूप से परिणमता है, तो भी राग के कारणरूप से कभी नहीं परिणमता है। किसी भी काल में। क्या कहा? आत्मा अपने स्वभाव को भूलकर मिथ्यात्वरूप से परिणमता है, पर्याय अपेक्षा से। तो भी मिथ्यात्व के कारणरूप से आत्मा नहीं है।

मुमुक्षुः- कभी भी नहीं होता है।

उत्तरः- कभी नहीं, किसी भी काल में। परिणमता है राग-द्वेषरूप से। तो भी उसका कारण आत्मा नहीं है और उसका कारण दर्शनमोह भी नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षुः- (यदि दर्शनमोह कारण हो तो) पराधीनता का प्रसंग आ जाएगा।

उत्तरः- आहाहा! अजब-गजब की बात है।

टाइम थोड़ा निकालकर, टाइम निकालकर शास्त्र स्वाध्याय करना चाहिए। भाईसाहब! आहाहा! और घी के व्यापार में कभी टोटा (नुकसान) भी नहीं आवे। ये स्वाध्याय करो ना, तो व्यापार में नुकसान (नहीं आवे)। नुकसान क्या? बहुत पैसा आएगा। ये लालच नहीं देता हूँ मैं।

मुमुक्षुः- (टोटा) आया ही नहीं है।

उत्तरः- हाँ! आया ही नहीं। मेरे पास पैसा आया ही नहीं है। बस!

मुमुक्षुः- नहीं! टोटा आया ही नहीं है। जब से (तत्त्व) सुना है, तब से टोटा आया ही नहीं।

उत्तरः- बराबर! आया ही नहीं। आवे ही नहीं। बराबर! बराबर! इसमें टाइम लगाओ, तो कोई

नुकसान हो जाये अपने धंधे में, ऐसा होता नहीं है। दालवाले साहब! ऐसा है।

मुमुक्षुः- बराबर है।

उत्तरः- बराबर! थोड़ा समय ज़्यादा निकालना। प्रोफेसर साहब! नीलम के पिताजी आये हैं ना। एक संध्या के पिताजी और एक (नीलम के पिताजी)।

आत्मा अपनेको रागादिका निमित्त कभी भी नहीं होता, आहाहा! किसी भी काल में। रागरूप से परिणमता है, तो भी राग का कारण आत्मा नहीं है। राग का कारण आत्मा नहीं है और कर्म का उदय भी कारण नहीं है। कर्म का उदय तो निमित्तमात्र है, निमित्तकारण है। सच्चा कारण वो नहीं है। और आत्मा, भगवान आत्मा भी अशुद्धता का कारण नहीं है। आत्मा तो शुद्ध है। शुद्ध, अशुद्ध का कारण होता है? और परद्रव्य जो भिन्न है, अत्यंत भिन्न, वो कारण बनता है इधर आकर? अपने क्षेत्र में आता है कर्म? (नहीं) आहाहा! तो राग की उत्पत्ति का कारण क्या है? कि स्वभाव से च्युत होना। स्वयं, अपने को जानने का भूल गया। आहाहा! जाननहार जानने में आने पर भी मेरे को जानने में आता नहीं है। इसलिए वो राग की उत्पत्ति का नियमरूप कारण है। लिख लेना, कभी भूलना नहीं।

मुमुक्षुः- निमित्तरूप कारण कौन है?

उत्तरः- निमित्तकारण दर्शनमोह है। भिन्न द्रव्य है ना। तो भिन्न जो द्रव्य है, वो निमित्तकारण यानि अकिंचित्कर (है)। कारण कहा जाता है, मगर कारण है नहीं। कारणपने का उपचार आता है, सचमुच वो कारण नहीं है। भगवान, भगवान आत्मा तो निमित्तकारण भी नहीं है। कर्म (के) ऊपर तो निमित्तकारण का आरोप आता है।

फिर से। क्या कहा? फिर से। सूक्ष्म बात है! वो सिद्ध करना है - आत्मा राग का निमित्त नहीं है। वो बात सिद्ध करना है। समझ गए? राग की उत्पत्ति हुई, उसमें भगवान आत्मा निमित्तकारण नहीं है। क्यों निमित्तकारण नहीं है? (क्यों) कि राग आत्मा के आश्रय से होता नहीं है, एक बात। और राग आत्मा को प्रसिद्ध करता नहीं है, दो। और राग आत्मा में अभेद होता नहीं है, तीन है। तो आत्मा राग की उत्पत्ति का उपादानकारण नहीं, निमित्तकारण भी नहीं। तो राग की उत्पत्ति का उपादानकारण कौन और निमित्तकारण कौन? कि राग की उत्पत्ति का उपादानकारण पर्याय। और ऐसे राग की उत्पत्ति का नियमरूप कारण कौन? कि अपने स्वभाव से च्युत होना। राग मेरा है, वो राग की उत्पत्ति का कारण है। राग मेरा है, वो राग की उत्पत्ति का कारण है। मैं भगवान आत्मा हूँ, तो राग की उत्पत्ति होगी नहीं। तो निमित्तकारण कोई होता नहीं है। उत्पन्न हो तो निमित्तकारण हो। उत्पन्न ही न हो।

अद्भुत बात है! आत्मा निमित्त नहीं है, राग के अंदर। तीन कारण कहे ना। ज़रा फिर से। राग उत्पन्न होता है। तो राग उत्पन्न होता है, तो आत्मा के लक्ष्य से, आत्मा के आश्रय से होता नहीं है, एक। वो राग आत्मा का लक्षण नहीं है, तो राग आत्मा को प्रसिद्ध करता नहीं है। और राग जाति जुदी है, तो आत्मा से अभेद होता नहीं है। इसलिए राग आत्मा से सर्वथा भिन्न है। कथंचित् भिन्न-अभिन्न नहीं, सर्वथा भिन्न है। और राग की उत्पत्ति होती है? हाँ! होती है। तो भी आत्मा निमित्तकारण नहीं है। तो निमित्तकारण कौन? कि कर्म का उदय निमित्तकारण। तो उपादानकारण कौन? कि पर्याय का कारण पर्याय। उस पर्याय (में) राग की उत्पत्ति का कारण कौन? कि अपने स्वभाव को भूल जाना, ज्ञाता को

कर्ता मानना। आहाहा! राग मेरा है, ऐसा मानना वो मिथ्यात्व की उत्पत्ति का कारण है। देह मेरा है, ऐसा मानना, पुत्र-पुत्री मेरे हैं, लक्ष्मी आदि मेरी है, मेरा मानना वो राग की उत्पत्ति, मिथ्यात्व की उत्पत्ति का कारण है। आहाहा!

निमित्त कभी भी नहीं होता, [आत्मा आत्मनः रागादिनिमित्तभावम् जातु न याति], आहाहा! कोई भी काल में आत्मा राग का, मिथ्यात्व का निमित्तकारण बनता नहीं है। उपादानकारण तो नहीं, निमित्तकारण भी नहीं है। आहाहा! अद्भुत बात है! ये कलश ऊँचा है। कलश-टीका में बहुत उसका खुलासा किया है कि राग की उत्पत्ति का उपादानकारण कौन? कि अन्तर्गर्भित पर्यायरूप परिणमनशक्ति, उपादानकारण। निमित्तकारण कौन? कि दर्शनमोह और चारित्रमोह का उदय। ये जैसे लागू पड़े ये निमित्तकारण ऐसा लिखा।

कभी भी नहीं होता, यानि आत्मा। आहाहा! राग उत्पन्न होता है, आत्मा (उसका) कारण नहीं है। आत्मा के कारण से नहीं होता है। आत्मा के कारण से राग हो, तो सिद्ध परमात्मा तो हैं आत्मा, तो राग की उत्पत्ति होनी चाहिए। आत्मा का होना राग की उत्पत्ति का कारण नहीं है। कर्म का उदय होना राग की उत्पत्ति का कारण नहीं है। अपने स्वभाव को भूल जाना राग की उत्पत्ति का कारण है।

मुमुक्षुः- मात्र एक ही कारण है।

उत्तरः- एक ही कारण है। अद्भुत शास्त्र है!

दो कारण की बात है। राग की उत्पत्ति ही नहीं हो। राग की उत्पत्ति का कारण जहाँ तक है, राग का कर्ता मैं हूँ (ऐसा मानता है), तहाँ तक राग उत्पन्न होता है। राग का कर्ता मैं हूँ, तहाँ तक मिथ्यात्व उत्पन्न होता है। आहाहा! राग का कर्ता भी नहीं और राग का ज्ञाता भी नहीं। मैं अकर्ता, ऐसा ज्ञायक का ज्ञाता हूँ। आहाहा! तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति होती नहीं है। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग प्रगट हो जाता है। सुख का मार्ग।

कभी भी नहीं होता, बोलो! कोई एक समय ऐसा नहीं आता कि मिथ्यात्व और कषाय, योग, आस्रव का कारण आत्मा बन जाये। आहाहा! निमित्तकारण भी नहीं बनता है। उपादानकारण तो बने ही नहीं। उपादानकारण बने तो तद्रूपो न भवति। और उस रूप हो जाये, रागरूप हो जाये, ऐसा तो कभी बनता नहीं है। यानि उपादानकारण तो नहीं, निमित्तकारण भी नहीं है। आहाहा! अद्भुत बात है! निमित्त का निषेध किया। राग का निमित्तकारण आत्मा नहीं है, निमित्त का निषेध करता है।

उसमें निमित्त परसंग ही है। परद्रव्य नहीं, परद्रव्य का जब संग करता है। परद्रव्य का संग कब करता है? इधर से छूट जाता है, वहाँ जुड़ता है, तब। इधर से, अभेद में पर्याय को वहाँ से खींचता है। पर्याय को वहाँ से खींचकर आत्मा से जुदा करता है। जैसे माता के पास से कोई बालक को खींच लेवे, बालक (को) खींच लेवे, तो बालक भी रोये और माता भी रोये। रोये कि नहीं? आहाहा! मेरे बालक को ले गया, मेरे बालक को ले गया। ऐसे भगवान आत्मा ज्ञानमयी है, उपयोग में आत्मा अनन्य है। अनन्य होने पर भी, वो उपयोग वहाँ से हटकर अभेद में भेद कल्पना करके, पर का लक्ष्य करता है। परसंग एव, पर का संग करे तब निमित्त कहलाता है। पर का संग न करे, तो निर्जरा हो जाती है। कुशील का संग न करे... कर्म कुशील है। उसका संग न करे, तो-तो निर्जरा होती है। और संग करे तो

राग उत्पन्न होता है। आहाहा! निर्जरा में सुख है, राग में दुःख है। आहाहा! तेरे हाथ की बात है। इधर देखना कि वहाँ देखना। आहाहा! तेरे हाथ की बात है।

मुमुक्षुः- पूर्ण स्वतंत्र है तू।

उत्तरः- स्वतंत्र है। आहाहा! **उसमें निमित्त परसंग ही है।** आहाहा! परसंग एव। 'ज' ('ही') है ना। परपदार्थ का अस्तित्व राग का निमित्त नहीं बनता है। ये रुमाल है ना, वो राग का निमित्त नहीं बनता है। मगर राग का निमित्त कब कहा जाये? कि ये मेरा है, तो (ये) निमित्त बन गया।

मुमुक्षुः- जो ऐसा मान ले।

उत्तरः- पदार्थ की हाज़री राग की उत्पत्ति का कारण नहीं है। पदार्थ में ममत्व करता है, तो उसका नाम निमित्त पड़ता है। आहाहा! इसको (रुमाल को) तो सब देखते हैं, सबको राग होना चाहिए। (यदि) पदार्थ का अस्तित्व होने से राग होता है, तो सबको राग होना चाहिए। परपदार्थ राग का कारण नहीं है। परपदार्थ का संग, यानि इसमें असंगी में से छूट गया, पर्याय असंगी के साथ (से) छूट गई, तो पर के साथ जुड़ गया, तो राग की उत्पत्ति का कारण, ऐसा निमित्त कहा जाता है। **निमित्त परसंग ही है। ऐसा वस्तुस्वभाव प्रकाशमान है। ऐसा वस्तुस्वभाव प्रकाशमान है। (सदैव वस्तुका ऐसा ही स्वभाव है, इसे किसीने बनाया नहीं है।)**

मुमुक्षुः- आज तो सार आ गया, सब।

उत्तरः- सार आ गया। सारा सार।

मुमुक्षुः- द्वैत तो पाड़ना ही नहीं। पर्याय द्रव्य में जो अखण्डपने बैठी हुई है...

उत्तरः- हाँ! उसको खींचता है।

मुमुक्षुः- खींचता है।

उत्तरः- रूचि। कर्ताबुद्धिवाले को पर्याय वहाँ से छूट जाती है। समय-समय छूटती है। ऐसा नहीं, छूटी है और छूटती है (ऐसा) नहीं। छोड़ देता है, बलात्कार करता है। ज्ञान को ज्ञायक के साथ तन्मय होने पर भी, वहाँ से खींचता है, ज्ञान की पर्याय को (खींचता है)। आहाहा! अभेद में से भेद कर देता है। आहाहा! भेद किया, तो पर के साथ अभेद की बुद्धि हो जाती है। अभेद होता नहीं है, अभेद की बुद्धि हो जाती है। बुद्धि बिगड़ जाती है।

मुमुक्षुः- है तो वो अभेद ही। हाँ! तो भी अभेद। अभेद ज्ञेय ही है।

उत्तरः- अभेद ज्ञेय है मगर उसकी बुद्धि बिगड़ गयी। तो ज्ञान का अज्ञान हो गया ना। ज्ञान का (अज्ञान हो गया)। तो अज्ञान में अभेद कहाँ होता है?

मुमुक्षुः- ना! ना! ना! बराबर! अज्ञान कहाँ से अभेद हो आत्मा से?

उत्तरः- हाँ! अज्ञान अभेद नहीं होता है। आहाहा!

मुमुक्षुः- ज्ञान अभेद रहता है।

उत्तरः- ज्ञान अभेद रहता है और अभेद की दृष्टिवाले को, आहाहा! वहाँ से छूटता ही नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षुः- आप ...पुर से आए हैं, पंडित जी हैं वहाँ के।

उत्तर:- जहाँ तक केवलज्ञान न हो, तहाँ तक मैं कुछ जानता ही नहीं हूँ, ऐसा रखने से अपने को लाभ होता है।